

बौद्ध धर्म के प्रमुख दार्शनिक तत्वों का विश्लेषण

अनीता यादव,
शोधार्थी, इतिहास विभाग
सिंघानियां विश्वविद्यालय

शोध—आलेख सारः— प्रत्येक धर्म की अपनी अलग—अलग दार्शनिक विशेषताएँ होती हैं। इसी तरह बौद्ध धर्म की भी अपनी विशेषताएँ हैं। महात्मा बुद्ध के विचार ही बौद्ध दर्शन के प्रमुख आधार हैं।

मुख्य शब्दः— क्षणिकवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद, अनात्मवाद, मज्जिम पटिपदा, कर्मवाद

दार्शनिक तत्व

क्षणिकवाद — महात्मा बुद्ध ने भौतिक पदार्थों को अनित्य और क्षणिक माना है। इस अनित्यता के नियम का अपवाद नहीं है। बुद्ध कार्य—कारण की निरंतरता को या अविच्छिन्नता को नहीं मानते थे। बुद्ध के अनुसार तत्व तीन हैं — स्कन्ध, आयतन और धातु।

स्कन्ध पांच हैं — रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान। आयतन बारह हैं— चक्षु, त्रोत्त, घ्रण, चिह्नवा, त्वचा और मन, ये छः इन्द्रियां तथा इनके छः विशय — रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श और धर्म। धातु अठारह हैं — छः इन्द्रिया तथा इनके छः विशय और इनके सम्पर्क से उत्पन्न छः विज्ञान। विश्व की सभी वस्तुएं इनके अन्तर्गत हैं तथा वे अब अनित्य और क्षणिक हैं। पहले क्षण में जो वस्तु है, दूसरे क्षण में उसका वह रूप नहीं।

प्रतीत्यसमुत्पाद — छठी शताब्दी ई.पू. में, कई विभूतियों दुःख से मुक्ति की खोज में परिव्राजक बने और उन्होंने दुःखमय संसार की समस्या को विविध प्रकार से सुलझाने का प्रत्यन किया। महात्मा बुद्ध की अवधारणा में “प्रतीत्यसमुत्पाद” के द्वारा दुःख, समुदाय के प्रश्न का समाधान हुआ।¹ प्रतीत्यसमुत्पाद बौद्ध दर्शन का आधार है। इसकी गहनता, व्यापक और सुक्ष्मता समूचे बौद्ध साहित्य में दृश्टव्य है।²

प्रतीत्य शब्द का अर्थ है कारण और समुत्पाद का अर्थ है उत्पन्न होना अर्थात् एक वस्तु के विनाश के बाद दूसरी वस्तु उत्पन्न होती है। इसे ही बुद्ध ने प्रतीत्यसमुत्पाद कहा है।³ हर उत्पाद का कोई प्रत्यय है। प्रतीत्यसमुत्पाद कार्य — कारण सम्बन्ध को विच्छिन्न—प्रवाह कहता है। वैसे अनादि काल से व्यक्ति की उत्पत्ति हेतु फल के अनुसार हो रही है और जब तक हेतुफल बनें रहेंगे, तब तक उसकी सन्तति अविच्छित रूप से बनी रहेगी। इस सन्तति को अटूट बनाये रखने में किसी अदृश्य शक्ति का सम्बन्ध नहीं है। प्रत्युत्त हेतुफल (कार्य कारण) के कारण यह सम्भव सदा बना रहता है। एक के विनाश के पश्चात् उसी के कारण

से दूसरे की उत्पत्ति होती है और यह क्रम उस समय तक बना रहता है जब तक कि हेतु का सर्वदा विनाश न हो जाए।

अनात्मवाद – बुद्ध दर्शन अनात्मवादी है। बुद्ध ने वैदिक दर्शन में प्रतिष्ठित आत्मा को नहीं माना अर्थात् वे साधारणतः आत्मा के सम्बन्ध में मौन थे। इसका प्रधान कारण था कि आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जिस तप और तत्त्व ज्ञान के पचड़े में पड़ना अपेक्षित था, उसके बिना ही उन्हें निर्वाण प्राप्ति का मार्ग मिल चुका था।⁴ आत्मा के लिए बौद्धों ने सत्काय पद का प्रयोग किया, अर्थात् काया में विद्यमान और काया में भिन्न अमर तत्व। बुद्ध का अनात्मवाद अभावात्मक नहीं था।⁵ उपनिषदों ने आत्मा को नित्य, ध्रुव वस्तु, सत्य माना। परन्तु बौद्ध इसे अनात्मा, अनित्य, अध्रुव कहते हैं।

मज्जिम पटिपदा (मध्यम मार्ग) – प्रतीत्यसमुत्पाद की व्याख्या को और अधिक स्पष्ट करने के लिए भगवान बुद्ध ने मध्यम मार्ग का अन्वेषण किया। यह शाश्वतवाद और उच्छेदवाद के बीच का पथ है जिसका उपदेश बुद्ध ने भिन्न अवसरों पर अपने अनुयायियों को दिया था।⁶

कर्मवाद – बौद्ध धर्म एक मनोवैज्ञानिक धर्म है जिसमें कर्म मुलतः दो प्रकार के हैं – चित्त कर्म अर्थात् मानसिक कर्म और चेतसिक कर्म अर्थात् काम और वचन से उत्पन्न कर्म। इसमें चित्त कर्म प्रधान है। बुद्ध की दृष्टि से कर्म एक प्रकार का चित्त संकल्प है। जिसे उन्होंने चेतना शब्द कहकर व्यवहृत किया। बुद्ध के अनुसार स्वकृत कर्मों के फल का भोगी स्वयं है, अन्य नहीं।⁷ अर्थात् कर्म और उसका विपाक (फल), ये ही दो विद्यमान हैं। कर्म से विपाक होता है। विपाक से कर्म और फिर कर्म से पुर्णजन्म, इस प्रकार यह संसार चल रहा है। जब कर्म रुक जाता है तब विपाक रुक जाता है और फिर पुर्णजन्म नहीं होता। कर्म के ही कारण प्राणियों में विभिन्न प्रकार के भेद दिखाई पड़ते हैं।

कर्म और पुर्णजन्म का तारतम्य बना रहता है जब तक कि निर्वाह का साक्षात्कार न हो जाए, किन्तु निर्वाह का साक्षात्कार हो जाता है तब कर्म और पुर्णजन्म रुक जाते हैं। अविद्या के कारण ही व्यक्ति कर्म करता रहता है और उन्हीं के कर्मों से संसार बनते रहते हैं और सम्पूर्ण भव-चक जारी रहता है किन्तु जब अविद्या नष्ट हो जाती है, विद्या प्राप्त होती है, तब कर्म का क्षय हो जाता है और संस्कारों का होना बन्द हो जाता है और फिर पुर्णजन्म नहीं होता।

अनीश्वरवाद – बुद्ध ने किसी सृष्टिकर्ता की सत्ता का प्रतिपादन नहीं किया।⁸ बुद्ध के प्रतीत्यसमुत्पाद में ईश्वर की स्थिति की संभावना भी नहीं है।

त्रिरत्न – महात्मा बुद्ध का मत है कि ज्ञान के बिना निर्वाण नहीं होता। ज्ञान की उत्पत्ति के लिए शरीर की शुद्धि आवश्यक है। इसके तीन साधन हैं – शील, समाधि और प्रज्ञा।⁹

शील – समस्त सात्त्विक कर्मशील है। भिक्षु तथा गृहस्थ दोनों के लिए सामान्य शील है – अहिंसा, अस्तेय, सत्यभाषण, ब्रह्मचर्य और नशो का त्याग। भिक्षुओं के लिए पांच विशेष शील हैं – अपराध, भोजन, मालाधारण, संगीत का त्याग, सुवर्ण रजत का त्याग और महार्घ शय्या का त्याग

समाधि – समाधि से तीन प्रकार की विद्याएं उत्पन्न होती हैं – पूर्व जन्म की स्मृति, जीव की उत्पत्ति और विनाश का ज्ञान तथा चित्त के बाधक विषयों का ज्ञान

प्रज्ञा – प्रज्ञा तीन प्रकार की है। ऋतुमयी, चित्तमयी और भावनामयी, ऋतुमीय प्रज्ञा आक्षतोप्रदेश से प्राप्त होती है युक्तियों से उत्पन्न प्रज्ञा चिन्तामयी है। समाधिजन्य नियम भावनामयी प्रज्ञा है।

निर्वाण – निर्वाण बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य है और इसे जीवन में अनुभव किया जा सकता है। जिस प्रकार महात्मा बुद्ध ने बोधिवृक्ष के नीचे निर्वाण का साक्षात्कार किया था। निर्वाण ज्ञानियों द्वारा अपने भीतर अनुभव करने की वस्तु है। वह न उत्पन्न होता है और न ही विनष्ट होता है। वह एक स्थिति है जो परम शान्त और रोग शोक से रहित है। वह परम सुख है। उसे प्राप्त कर परम शान्ति प्राप्त होती है। इसलिए निर्वाण को उत्तम शान्ति या शान्तिपद भी कहते हैं।

गौतम बुद्ध ने मानव को दुख से निवृत करने की योजना को सर्वोच्च पद निर्वाह के रूप में प्रतिशिठत किया। उनकी दृष्टि में जन्म, जीवन और मरण तीनों ही दुख हैं। जिसे दूर करने के लिए अश्टांगिक मार्ग है। इस तरह प्रमाणित होता है कि प्रतीत्य – समुत्पाद, अनात्मवाद, मध्यम मार्ग, कर्मवाद आदि सभी दार्शनिक तत्त्व निर्वाह प्राप्ति में सहायक हैं। बौद्ध धर्म के विकास व निकाय विकास के वर्णन अनिवार्य हैं जिसके लिए हमें भिक्षुओं के मतभेद व उनकी नव उदित विचारधारा के बारे में पता चलेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय – बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ. 77
2. कृष्ण कुमार – प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 276
3. वही
4. रामजी उपाध्याय–प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ. 391
5. कृष्ण कुमार – प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 276

6. भागचन्द भास्कर, बौद्ध धर्म का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 101
7. वही
8. कृष्ण कुमार – प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 277
9. वही, पृ. 278

